संसद में चली बहस के बाद यह आशंका पैदा हुई कि राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों को हटा दिया जाएगा। यह लेख एनसीएफ 2005 के बाद चली पाठ्यपुस्तक निर्माण की सघन प्रक्रिया का बयान करता है। लेख बताता है कि यह प्रक्रिया न सिर्फ लोकतांत्रिक थी बल्कि पाठ्यपुस्तकों के तमाम पहलुओं के प्रति सजग थी और इसके चलते अनेक बार पुस्तकों में आमूल परिवर्तन भी किया गया।

किताब में आनंद बचा रहने दें

विनोद रैना

कार्टून विवाद के चलते पाठ्यपुस्तकों को वापस ले लेना एक किस्म की तबाही होगी

कक्षा 11वीं की राजनीति विज्ञान की पुस्तक में शंकर के कार्टून को लेकर उठे विवाद से प्रकट हो रही एक जैसी प्रतिक्रियाओं के चलते बहुत संभावना है कि पाठ्यपुस्तकों को वापस ले लिया जाए और उस सारी प्रक्रिया को वापस ले लिया जाए जिसने हाल ही के वर्षों में एनसीईआरटी जैसी एक स्वायत्त संस्था द्वारा कुछ सबसे बेहतर पाठ्यपुस्तकों का रचा जाना देखा। और यह एक किस्म की तबाही होगी।

संसद में एक भीड़ जैसे मंजर से सामना और खुद कांग्रेस और उसके घटक दलों सहित सभी दलों के सांसदों द्वारा यूपीए सरकार को ठोसे मारना, ऐसे में यह अकल्पनीय है कि मानव संसाधन विकास मंत्री द्वारा तुरत-फुरत में दी गई प्रतिक्रिया क्षमायाचना, पुस्तक के वर्तमान स्वरूप को वापस लेने व जांच बिठाने के अलावा कुछ और हो सकती थी। इसके एक दिन बाद ही सुहास पलशीकर के ऑफिस पर एक भीड़ के हमले ने सरकार के कदम पीछे खींचने में इजाफा ही किया होगा। भारतीय राजनीति में दलित निश्चित ही ऐसे महत्त्वपूर्ण निर्वाचन क्षेत्रों की निर्मिति करते हैं कि वे अगर जरा-सी भी नाराजगी प्रकट कर दें तो कोई भी दल अथवा सरकार सत्ता में बने रहने या आने की उम्मीद भी नहीं कर सकती है; और इस मामले में तो वे बेहद कुपित थे। ऐसे में सांसदों की प्रतिक्रिया उम्मीद के अनुरूप ही थी।

परिचय

जाने-माने शिक्षाविद्, केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् के सदस्य रहे हैं। एकलव्य, भोपाल के संस्थापक सदस्य, भारत ज्ञान विज्ञान समिति के राष्ट्रीय समन्वयक हैं।

एनसीईआरटी की इस पहल से बड़ी संख्या में रचनात्मक व नवाचार में लगे लोग स्कूली बच्चों के लिए शिक्षण सामग्री तैयार करने से जुड़ पाए और बेहतरीन लोगों ने अपनी इच्छा व तत्परता से अपनी सेवाएं दीं। तैयार किए गए प्रारूपों को एक निगरानी समिति द्वारा देखा गया और यह निगरानी समिति चाहे और कुछ भी हो किन्तु केवल नाममात्र के लिए शोभा की चीज नहीं थी।

ऐसे में जबकि किसी को भी इतिहास में दलितों के प्रति हुए अन्याय और उनकी चेतना पर हुए उसके असर के प्रति सावचेत होना चाहिए और इसकी समझ होनी ही चाहिए, एक बात जो बहुत चौंकाने वाली लगती है वह यह कि कुछ महत्त्वपूर्ण दलित बुद्धिजीवी यह घोषित करने में लगे हैं कि अंबेडकर दलितों के मसीहा थे और उनकी निंदा या अपमान किए जाने पर कोई संदेह भी सहन नहीं किया जाएगा और उसे दंडित किया जाएगा। देवत्व के ऐसे आरोपण से दलित सरोकारों को पहुंचने वाले नुकसान को हाशिए पर धकेल दिए जाने के कारण खुद अंबेडकर की राजनैतिक प्रासंगिकता खतरे में है और यह अगर राजनैतिक कार्यकर्ताओं व सांसदों को दिखाई नहीं देता है तो कम से कम दलित बुद्धिजीवियों व विद्वानों को तो अवश्य ही नजर आना चाहिए। ऐसे अनूठे व्यक्ति पर जिसने दलित हितों के मार्गदर्शक सिद्धांत बौद्ध दर्शन की सामग्री को तर्कसंगत बनाया, इस तरह के देवत्व का आरोपण खासतौर पर विडंबना ही है।

संसद की स्थापना का 60 वां साल उस संविधान की रचना किए जाने की नजर से एक तरह से उत्सव मनाने का समय है जिसने इस देश में संसद, न्यायपालिका व कार्यपालिका को संभव बनाया और इस सबमें अंबेडकर ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। राज्य की संरचनाओं का निर्माण उन सब पर रोक लगाने अथवा विधिपूर्वक निबटने के लिए किया जाता है जिन्हें इस कार्टून विवाद ने उघाड़कर रख दिया : यानी भीड़ संस्कृति। अब इन संरचनाओं में से एक न्यायपालिका को अपनी भूमिका अदा करने देनी चाहिए; वरना हम सब छद्म न्याय घटित होते हुए देखेंगे।

यह जरूरी नहीं कि क्षुब्ध सांसदों और कुछ दलित बुद्धिजीवियों की इस बात से कि 1949 में पहली बार बनाया गया और खुद अंबेडकर द्वारा देखा गया कार्टून अपमानजनक है, हर कोई सहमत हो। अगर इस पर अपमानजनक होने का आरोप लगाया भी जाता है तो इसे कानूनी शासन के निरीक्षण से गुजरना चाहिए, जैसा कि अन्य सामान्य अपमानजनक आरोपों के साथ किया जाता है। भारतीय संविधान में स्थापित कानूनी सिद्धांत यह मांग करते हैं कि सरकार को यह निर्णय लेने में कि पाठ के साथ दिया गया कार्टून क्या वास्तव में अपमानजनक है; केवल क्षुब्ध और भावनात्मक दलीलों को स्वीकार कर लेने की जगह कानूनी न्याय की मदद लेनी चाहिए। दीवानी विवादों, अपराधों अथवा निंदा के मामलों में सांसद व मीडिया अपराध या दंड के बारे में निर्णय नहीं लेते बल्कि न्यायालय लेते हैं। इसके अलावा की जाने वाली कोई भी चीज राज्य की न्यायिक संरचना को अपूरणीय क्षति पहुंचाने वाली होगी।

यह और भी महत्त्वपूर्ण है कि अगर सरकार

किताबें वापस लेकर अथवा किताबें बनने की उस प्रक्रिया को जो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज 2005 को अंगीकार कर लेने के बाद 2006 से बनी हुई हैं, वापस लेकर बच्चे को उसकी शैशव अवस्था में ही दफना देना निश्चित कर लेती है तो यह और भी भयावह होगा। एनसीईआरटी की इस पहल से बड़ी संख्या में रचनात्मक व नवाचार में लगे लोग स्कूली बच्चों के लिए शिक्षण सामग्री तैयार करने से जुड़ पाए और बेहतरीन लोगों ने अपनी इच्छा व तत्परता से अपनी सेवाएं दीं। तैयार किए गए प्रारूपों को एक निगरानी समिति द्वारा देखा गया और यह निगरानी समिति चाहे और कुछ भी हो किन्तु केवल नाममात्र के लिए शोभा की चीज नहीं थी। कक्षा 3 की गणित की उस किताब के पूरे के पूरे प्रारूप को खारिज कर देने व काट देने की सिफारिश करने वालों में मैं खुद शामिल था, जिसे समय की बाध्यता के बावजूद लेखकों के समूह ने दोबारा से साहसपूर्वक लिखा। एक बार अनुपयुक्त पाए जाने पर और यहां जोड़ा जाना चाहिए कि यह अनुमान लगने पर कि सामग्री समाज के किसी खास वर्ग के लिए अपमानजनक हो सकती है, उनकी भावनाओं को ठेस पहुंचा सकती है; और यह एक ऐसी घटना है जिसका विस्तार देश में तेजी से हो रहा है, प्रारूप सामग्री को बदलने, हटाने व पुनर्लेखन करने के इस तरह के और भी कई उदाहरण मौजूद हैं। इसके परिणामस्वरूप लेखन समूहों व निगरानी समिति के बीच झड़पें भी हुईं किन्तु यह प्रक्रिया बिना एक-दूसरे को अपना दुश्मन बनाए अपनी उत्कृष्ट अकादमिक भावना के साथ चलती रही। प्रोफेसर थोराट के नेतृत्व वाली समिति द्वारा एक और समीक्षा किया जाना ठीक है किन्तु इसे सारे कार्टूनों व तस्वीरों को एक ही झटके में बिना किसी स्पष्टीकरण के हटा दिए जाने की मंशा के साथ और खास तौर पर विगत की शैक्षणिक दृष्टि से कमजोर, अरुचिकर व उबाऊ किताबों की तरफ लौटने की सिफारिश करने के नजरिए से नहीं किया जाए। ◆

भाषान्तर : प्रमोद पाठक

(25 मई, 2012 इण्डिया टुडे से साभार)